**ओ३म्**

**‘महानतम व श्रेष्ठतम पुरुष वेदर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार में सृष्टि के आदि काल से जो मनुष्य उत्पन्न हुए हैं उनकी गणना करना सम्भव नहीं है। कारण यह है कि ईश्वर की यह सृष्टि अनन्त है। जीवात्माओं की संख्या भी अनन्त है। यह अनन्त जीवात्मायें इस पृथिवी लोक व ब्रह्माण्ड के अन्य पृथिवी सदृश लोकों में अपने कर्मानुसार मनुष्य आदि योनियों मे जन्म लेती रहती हैं। मनुष्य की औसत आयु यदि हम एक सौ वर्ष भी मान लें तो सृष्टि के विगत के 1.96 अरब वर्षों के सृष्टि काल में एक जीवात्मा का 1.96 करोड़ से अधिक बार जन्म हो चुका है। इन जीवात्माओं में मनुष्यों सहित नाना प्राणियों के रूप में संससार में जन्म लिया है। इनमें मनुष्यों की ही संख्या की बात करें तो सृष्टि में विद्यमान असंख्य जीवात्माओं के लगभग 2 करोड़ बार जन्म हो चुके हैं। इन सभी जीवात्माओं में यदि श्रेष्ठतम व महानतम् मनुष्य की बात करें तो ज्ञात पुरुषों में हमें ऋषि दयानन्द महानतम् पुरुष दृष्टिगोचर होते हैं। ऋषि दयानन्द और महाभारत से पूर्व राम व कृष्ण आदि महापुरुषों के नाम इतिहास में वर्णित हैं। अनेक ग्रन्थों के लेखक ऋषियों का वर्णन भी मिलता है परन्तु उनका काल बहुत पुराना होने व उनका सम्पूर्ण इतिहास ठीक ठीक विदित न होने से हम उनकी तुलना ऋषि दयानन्द से नहीं कर सकते। हो सकता है कि अनेक ऋषि व महापुरुष ऋषि दयानन्द जी से महान हुए हों परन्तु ऋषि दयानन्द का जो जीवन चरित हमारे समक्ष उपस्थित है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि ऋषि दयानन्द किसी भी महान पुरुष से कमतर नहीं थे। यह बात हम भावनाओंवश नहीं कह रहे हैं अपितु इसके पीछे हमारे कुछ समुचित तर्क व आधार हैं।

किसी व्यक्ति का मूल्याकंन उसके व्यक्तित्व व कृतित्व से होता है। ऋषि दयानन्द (1825-1883) गुजरात में एक शिवभक्त पौराणिक पिता के परिवार में जन्में थे। उनके समय में सारा देश ही नहीं अपितु समस्त विश्व अविद्या, अन्धविश्वासों, पाखण्डों व मिथ्या पूजा पद्धतियों से त्रस्त था। सामाजिक असमानता अपनी चरम सीमा पर थी। समाज में बहुपत्नी प्रथा विद्यमान थी। निर्धन व असहाय लोगों का लालच व बल प्रयोग कर मुल्ला व मौलवी सहित पादरी आदि धर्मान्तरण कर उन्हें अपने मत में सम्मिलित कर लेते थे। समाज में छुआछूत व ऊंच-नीच की भावना विद्यमान थी। समाज जन्मना जाति के भयंकर कुचक्र में फंसा हुआ था। बेमेल विवाह होते थे। बाल विवाह प्रचलित थे। बाल विधवाओं के आर्तनाद वा दुःखों का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। मनुष्यता समाज में कहीं दिखाई नहीं देती थी। विद्या के केन्द्र पाठशालाओं का देश में अभाव था। अक्षर ज्ञान व भाषा का अल्प ज्ञान ही बहुत समझा जाता था। संस्कृत व संस्कृति विलुप्ति के कागार पर थे। गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार विवाह व वर्णव्यवस्था पूर्णतयः विलुप्त हो चुकी थी। वेद विलुप्त प्रायः थे। यदि कहीं थे तो भी उनके सत्य अर्थों का किसी को ज्ञान नहीं था। वेदों व उनके सत्य अर्थों का अध्ययन देश भर में समाप्त हो चुका था। देश पहले मुसलमानों का दास बना और उसके बाद अंग्रेजों का दास बना। जो कुछ हिन्दू राजा स्वतन्त्र थे उनके राज्य में भी प्रजा को शिक्षा की सुलभता व न्याय की प्राप्ति नहीं होती थी। ऐसे विपरीत समय में ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ था। हमें लगता है कि ऐसा अ अन्धकारमय वातावरण इससे पूर्व के किसी महापुरुष के समय में नहीं रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में ऋषि दयानन्द को अपने पिता करषनजी तिवारी जी के साथ सन् 1839 की शिवरात्रि के दिन व्रत व जागरण करते हुए शिवलिंग पर चूहों को क्रीड़ा करते देख मूर्ति के रूप में उसके सच्चे शिव होने पर शंका व अश्रद्धा उत्पन्न हुई थी। पिता उनके प्रश्नों का समुचित उत्तर नहीं दे सके थे। अतः उन्होंने मूर्तिपूजा करना छोड़ दिया था। 14 वर्ष के एक बालक की यह कैसी प्रबुद्ध आत्मा थी कि वह अपने पिता व परिवार वालों की बात मानने को तैयार नहीं था। परिवार के बड़े वा छोटे किसी सदस्य में यह क्षमता नहीं थी कि उस बालक दयानन्द वा मूलशंकर के प्रश्नों वा शंकाओं का समाधान कर सके। अतः सत्य की खोज को दयानन्द जी को अपने जीवन का मिशन बनाना पड़ा और इसी कारण उन्होंने अपनी आयु के 22 वें वर्ष में गृह त्याग कर दिया और अपना जीवन सत्य ग्रन्थों की खोज, उनके अध्ययन, विद्वानों व योगियों से पठन पाठन व योग सीखने में लगाया। सन् 1857 का वर्ष ऋषि के जीवन काल में आता है। ऋषि ने इस अवधि की अपने जीवन की घटनाओं का उल्लेख नहीं किया। उनकी रूचि सच्चे ईश्वर की प्राप्ति व योग विद्या सीखने में थी परन्तु उनके परवर्ती जीवन एवं विचारों को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह इस संग्राम में इससे दूर रह पाये होंगे? इस अवधि में गुजरात के द्वारिका में बाघेर लोगों का अंग्रेजों के विरुद्ध वीरतापूर्वक युद्ध का चित्रण करने से दयानन्द जी का इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी होना भी सिद्ध होता है। सन् 1860 में वह गुरु विरजानन्द सरस्वती की संस्कृत पाठशाला मथुरा में उनसे पढ़ने के लिए आते हैं और लगभग तीन वर्ष उनके सान्निध्य में उनके अन्तेवासी बनकर उनसे आर्ष व्याकरण, जो वेदार्थ में प्रमुख रूप से सहायक है, उसका तलस्पर्शी अध्ययन करते हैं। सन् 1863 में उनका अध्ययन समाप्त हो जाता है। वह गुरु दक्षिणा देकर गुरु के परामर्श वा आज्ञा एवं साथ हि अपने विवेक से देश से अविद्या व दासता दूर करने का संकल्प लेकर स्वयं को देश हित के लिए सर्वात्मा समर्पित कर देते हैं।

कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होकर आपने अज्ञान, असत्य मान्यताओं, असत्य वा अयुक्त परम्पराओं एवं अविद्या का खण्डन आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपने निजी प्रयासों से धौलपुर वा किसी निकटवर्ती स्थान से चार वेद प्राप्त किये और सम्भवतः राजस्थान के करौली में कुछ सप्ताह व महीने रहकर उनका अनुशीलन व पर्यालोचन किया। अपने यौगिक बल व विद्या से वेद के सिद्धान्तों व मान्यताओं को जानकर आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि चार वेद सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न ईश्वर ज्ञान की पुस्तकें हैं। इसका विस्तार से वर्णन ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश व अपने अन्य ग्रन्थों में किया है। ऋषि की मान्यता है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने अमैथुनी सृष्टि कर मनुष्यों को बड़ी संख्या में युवावस्था में उत्पन्न किया था। इन मनुष्यों में चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा थे जिनकी आत्माओं ने ईश्वर ने अपने जीवस्थ व सर्वान्तर्यामी स्वरूप से इन चार ऋषियों को एक-एक वेद यथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। वेद ज्ञान के साथ संस्कृत भाषा व मन्त्रों के शब्दार्थ व पदार्थ का ज्ञान भी परमात्मा ने इन चार ऋषियों को दिया था। इन ऋषियों ने इन चार वेदों का ज्ञान ब्रह्मा जी को दिया तथा इसके बाद इन ऋषियों द्वारा अन्य सभी स्त्री वा पुरुषों को वेद पढ़ाये गये। यही परम्परा महाभारतकाल तक अबाध रूप से चली जिसके अप्रचलित होने पर ऋषि दयानन्द व उनके शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी सर्वदानन्द, पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी आदि ने आर्ष संस्कृत व्याकरण की अध्ययन परम्परा का पुनरुद्धार किया। ऋषि दयानन्द के समय यह अध्ययन परम्परा गुरु विरजानन्द सरस्वती जी की मथुरा स्थित पाठशाला में विद्यमान थी जो उनकी मृत्यु पर समाप्त हो गई थी।

स्वामी जी संसार के सभी पुरुषों व महापुरुषों में महानतम थे। इसका कारण यह है कि उन्होंने अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि का स्वयं संकल्प लिया और आर्यसमाज के नियमों में इसको स्थान दिया। सत्य विद्या के निभ्र्रान्त ग्रन्थ संसार में केवल वेद हैं। इन ग्रन्थों से ही सत्य विद्यायें दर्शन, ज्योतिष, व्याकरण व निरुक्त, आयुर्वेद सहित उपनिषद व स्मृति आदि ग्रन्थों में गई हैं। ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का सच्चा व पूर्ण यथार्थ स्वरूप वेदों में ही सर्वप्रथम ईश्वर द्वारा प्रकाशित किया गया है। वेदों में सभी सत्य विद्यायें हैं। इन वेदों का भाष्य भी ऋषि दयानन्द ने आरम्भ किया और मृत्यु पर्यन्त करते रहे। कुछ अवशिष्ट भाग का भाष्य उनके अनेक शिष्यों ने पूरा किया है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश आदि वेद के पूरक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं जो सत्य ज्ञान के संसार के सर्वप्रमुख ग्रन्थ हैं। 16 संस्कारों को पुनः प्रचलित करने का श्रेय भी ऋषि दयानन्द को है। इसके लिए उन्होंने संस्कार विधि ग्रन्थ का प्रणयन किया। उन्होंने सभी अन्ध विश्वासों व परम्पराओं का का खण्डन ज्ञान, तर्क,युक्ति व शास्त्रों के प्रमाणों से किया है। उन्होंने वेदों की सत्य मान्यताओं का मौखिक व लिखित रूप से प्रचार किया। इसके लिए उन्होंने अनेक अवसरों पर विद्वानों से शास्त्रार्थ वा शास्त्र चर्चायें भी कीं। सामाजिक असमानता को दूर करने में भी उनकी प्रमुख व प्रशंसनीय भूमिका है। देश की आजादी में ऋषि दयानन्द और उनके आर्यसमाज का मुख्य योगदान है। आजादी का लिखित रूप में मूल मन्त्र सबसे पूर्व ऋषि दयानन्द ने ही दिया था। उन्होंने अंग्रेजों के भय की चिन्ता नहीं की थी जिस कारण वह षडयन्त्र का शिकार हुए और 30 अक्तूबर, सन् 1883 को अजमेर में उनका देहरादून हुआ। उन्हें विषपान कराया गया था। मृत्यु में चिकित्सक डा. अलीमर्दान की त्रुटियां मुख्य कारण रहीं। ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना कर 10 स्वर्णिम सिद्धान्त भी दिये हैं। देश व समाज से अज्ञान, अविद्या, अन्धविश्वास, मिथ्यापूजा व देश की गुलामी को दूर करने और साथ ही शिक्षा के प्रचार व सामाजिक न्याय की दृष्टि से उनका योगदान अन्यतम है।

हमने इस लेख में अति संक्षिप्त रूप में ऋषि दयानन्द के कार्यों पर प्रकाश डाला है। यदि ऋषि दयानन्द न आते तो हम देश के पतन की सीमा का अनुमान भी शायद नहीं लगा सकते। अपने कार्यों के कारण ऋषि दयानन्द ने इस देश व विश्व को पतन में गिरने से बचाया और पतन के कारण अविद्या को दूर किया। अपने कार्यों के कारण वह इतिहास में अन्यतम महापुरुष वा महानतम पुरुष सिद्ध होते हैं। संसार ने अपनी अविद्या व स्वार्थों के कारण उनके महत्व को अभी भलीप्रकार से समझा नहीं है। उन्होंने संसार के सभी प्राणियों के कल्याण को अपनी दृष्टि में रखकर सत्य ईश्वर ज्ञान वेद अर्थात् विद्या वा ज्ञान का प्रचार किया जिसे जान व समझ कर ही मनुष्य अविद्या से दूर होकर ईश्वर व मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। सभी दुःखों से सर्वथा दूर होना अर्थात् ईश्वर वा मोक्ष की प्राप्ति सहित जन्म मरण से छुट्टी ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है जो केवल वेद की शरण में आकर वेद की शिक्षाओं का आचरण करने से ही प्राप्त होता है। अज्ञान दूर करने और विद्या का प्रकाश करने के लिए संसार की सारी मानव जाति सदा सदा के लिए ऋषि दयानन्द की ऋणी है और सदा रहेगी। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**